ISSN: 0973-0583

'उद्धवशतक' और 'सनेहशतक' का प्रतीक-विधान

कुमार विनोद

शोध छात्र, हिन्दी विभाग, रामचन्द्र चन्द्रवंशी विश्वविद्यालय, पलामू (झारखण्ड)

काव्य-रचना में प्रतीक का बड़ा ही अधिक महत्त्व है। किसी भी कठिन भावना को व्यक्त करने के लिए कवि के समक्ष जब कोई कठिनाई आती है तो कवि प्रतीक का सहारा लेता है। इससे काव्य में सुन्दरता आ जाती है और उसमें कथित रहस्य को समझने की क्षमता आ जाती है।

'प्रतीक' काव्य-भाषा का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। रचनाकारों ने प्रत्येक युग की प्रत्येक भाषा के काव्यों में काव्योत्कर्ष-हेतु प्रतीकों का प्रयोग किया है।

भारतीय साहित्य के लिए 'प्रतीक' शब्द अपरिचित जैसा रहा है, मगर इसका प्रयोग काव्य के क्षेत्र में विशिष्ट अर्थ में होता रहा है। वैदिक वाङ्मय में हमारे ऋषियों ने जिन विभिन्न देवताओं की उपासना की है वे देवगण किसी-न-किसी अलौकिक शक्ति के प्रतीक के रूप में आये हैं। उन देवताओं में अधिकतर अपने वाह्य रूप में प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रतिनिधि हैं और अपने अन्तः सत्य में परमतत्त्व से सर्वथा अभिन्न है। 'इस प्रकार वाह्य और आभ्यन्तर के बीच जो रूपक का भेद है, वह प्रतीक के द्वारा एकीकृत होता है। इस दृष्टि से प्रतीक वह प्रक्रिया है जो आभासित होने वाले दो या अनेक रूपों के बीच अन्तरंग एकत्व स्थापित करती है।

आधुनिक युग में प्रतीकवादी काव्य-धारा का उन्मेश सर्वप्रथम फ्रांस में पारनेशियनवाद और यथार्थवाद की भूमिका में हुआ था। साहित्य के क्षेत्र में यह प्रतीकवादी आन्दोलन परम्परागत तथ्यों और क्रमिक धारणाओं के शून्य गगन में विकसित नहीं होता, प्रत्युत् युगीन सभ्यता और संस्कृति की विशिष्ट आवश्यकताओं के आधार पर इसका विकास होता है। युगीन आवश्यकताओं के पूर्त्यर्थ प्रयास किये जाते हैं। उनसे उसे एक नूतन आकृति मिलती है। इस दृष्टि से कोई भी आन्दोलन सर्वथा निरपेक्ष और नूतनता लिये हुए नहीं होता। साहित्य और कला के अन्तर्गत प्रतीकवादी विचारधारा का उद्भव तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति की दृष्टि से हुआ था। उन दिनों पारनेशियनवाद तथा यथार्थवाद की नीरसता, तार्किकता और बौद्धिकता से युक्त भाषाओं के कारण फ्रांस की मेधा तितर-बितर हो गयी थी। इस युगल विचारधाराओं ने यथार्थ तथा अनुरूपता के आधार पर निराशाजनक एवं संशयपूर्ण धारणाओं को गति प्रदान करने की चेष्टा की थी। ऐसी ही चिन्तन-प्रक्रिया के प्रतिक्रिया-स्वरूप प्रतीकवाद विकसित होता है।

इस प्रकार बुद्धिवादी विचारणा के विरोध में ही प्रतीकवादी चिन्तन का विकास हुआ। इस क्षेत्र में आदर्शवादी एवं रहस्यवादी दार्शनिकों का भी बड़ा ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उन दार्शनिकों के विचारानुसार बुद्धि द्वारा जीवन के रहस्यमय तत्त्वों का प्रकाशन असंभव है। उन तत्त्वों को प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य-चिन्तकों ने शब्द को असीम शक्ति-संपन्न बताया और प्रत्येक शब्द को ज्ञान के महत्तर साधन के रूप में प्रतिष्ठित किया और बताया कि शब्द के अभाव में किसी भी विचार-क्रिया का होना असंभव है। शब्द की रहस्यात्मिका शक्ति पर विशेष जोर देते हुए इमर्सन ने शब्द तथा कार्य दोनों ही को दिव्य सत्ता का विविध आयाम बताया। शब्द और वस्तु की तद्रूपता का विवेचन करते हुए शब्द के रहस्य का प्रतिपादन कॉलरिज ने भी किया था। इमर्सन तथा कॉलरिज दोनों ही प्रतीकवादी चिन्तनधारा के सूत्रधार माने जाते हैं।

एडगर एलन पो की दृष्टि में कवि शिल्पकार होता है और इसीलिए वह प्रतीक-योजना द्वारा वस्तु का एक सजीव चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम होता है। पो के अनुसार काव्य का संगीत के साथ बड़ा ही घनिष्ठ संबंध होता है। इसीलिए सांगीतिकता के साथ प्रतीक-योजना द्वारा कवि अंतः प्रेरणा को मुखर करने में सफल हो पाता है।

बोदलेयर तो पो के काव्य-सम्बन्धी विचारधारा को पूर्णतः स्वीकार करता है और 'बहुमुखी युग्मों' के स्थान पर 'सम्पर्क व्यवस्था' का प्रतिष्ठापन करता है। यह संपर्क

अनेक रूपों द्वारा विकसित किया जाता है, जिनमें प्रतीक का सर्वाधिक महत्त्व है। इस संबंध में बोदलेयर ने कहा है कि इन्द्रियों की संवेदना का कोई अन्त नहीं है, जिनके द्वारा बिम्ब-जगत में किसी अनुरूप प्रतीक की उद्‌भावना होती है। बिम्ब-जगत की प्रत्येक वस्तुओं द्वारा तदनुरूप मानसिक प्रतीकों की सृष्टि होती है। कवि इन्द्रिय-जगत से ऐसे प्रतीकों का चयन करता है, जिसके माध्यम से वह अपनी अनुभूतियों का यथातथ्य संप्रेषण करने में समर्थ हो पाता है। वह आत्म-प्रकाशन-हेतु इन्द्रिय-जगत से विभिन्न साधनों की अपेक्षा करता है। बोदलेयर के काव्य में स्वप्निल भावनाएँ व्यंजनापूर्ण प्रतीक तथा इन्द्रिय बोध्य को रहस्यात्मक भाज़ा से अभिमंडित करनेवाले अनेक प्रतीकात्मक प्रयत्नों की अभियोजना देखी जा सकती है।

जीवन और जगत की भाँति शब्द भी प्रतीकात्मक है। गंभीरतापूर्वक विचार करने पर सृष्टि के प्रत्येक कार्य-व्यापारों में हमें प्रतीकात्मकता दृष्टिगोचर होगी। 'मुस्कुराना' आनन्द का, 'रोना' दु:ख का, 'व्यर्थ का बकवास करना' मानसिक असंतुलन का और 'सोच-समझकर काम करना' विवेकशीलता का प्रतीक है। इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हम भाँति-भाँति के प्रतीकों को देखते हैं। मगर इन प्रतीकों की काव्य तथा साहित्य के क्षेत्र में बड़ी ही अधिक महत्ता है। कोई सामान्य व्यक्ति नये प्रतीकों को गढ़ नहीं सकता, क्योंकि उसके पास शब्द-ज्ञान या शब्द-शक्ति का अभाव होता है, मगर कवियों या साहित्यकारों में नये प्रतीकों को गढ़ने की क्षमता इसलिए होती है, क्योंकि उन्हें शब्द-शक्ति का ज्ञान तो होता ही है उनमें भावचित्री तथा कारयित्री दोनों प्रतिभाएँ भी होती हैं। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह शब्दों में नवीन अर्थ, नूतन सौन्दर्य और नयी भंगिमादि के सन्निवेश में सक्षम हो पाता है। नये प्रतीकों के प्रति उनमें सजगता होती है और इसीलिए वे नये प्रतीकों को सरलतापूर्वक ग्रहण नहीं कर पाते हैं, बल्कि उसे खूब सोच-समझकर और उसके औचित्य को जानकर ही उसका प्रयोग करते हैं।

प्रत्येक शब्द अलग-अलग भाव, संवेदना और संकेत के प्रतीक होते हैं। शब्दों के संकेत युग-विशेष, वातावरण-विशेष और सन्दर्भ-विशेष के कारण यदा-कदा बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए 'मृग' शब्द का प्रयोग प्राचीन साहित्य में 'पशु' के लिए हुआ है, मगर आधुनिक साहित्य में 'मृग' शब्द एक पशु-विशेष के लिए प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार वेदों में 'सुर' शब्द राक्षसों के लिए और 'असुर' शब्द देवताओं के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार प्रतीक या तो परम्परागत होते हैं या समसामयिक युग से प्रभावित होते हैं और इसीलिए परम्परा और समसामयिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में ही उनका अनुशीलन संभव है। इससे यही विदित होता है कि प्रतीक का सम्बन्ध समाज में प्रचलित किसी विचारधारा से होता है, न कि किसी कवि की वैयक्तिक विचारधारा से। चूँकि प्रतीक सामाजिक विचारधारा से संगुम्फित होते हैं, इसीलिए प्रतीक काव्य का सम्प्रेषण काव्यात्मक हो पाता है ।

प्रतीकात्मक शब्दों के संकेत, सामान्य प्रचलित अथवा रूढ़ शब्दों से भिन्न होते हैं और उनके द्वारा नये भाव, गुण, विचार, तथ्य आदि अभिव्यंजित होते हैं। प्रतीकों द्वारा पूर्ण रूप का साक्षात्कार नहीं कराया जाता, बल्कि उसकी एक हल्की-सी झलक उपस्थित कर दी जाती है और यह झलक इतनी अधिक मर्मस्पर्शिनी तथा प्रभावोत्पादिका होती है कि उन प्रतीकों के नये अर्थ स्वत: ही प्रकट हो जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रतीकों की झलक न तो स्पष्ट ही रहती है और न अस्पष्ट ही, वैसी स्थिति में उस झलक को अर्थ की 'छाया' या 'भंगिमा' की संज्ञा दी जाती है। अपनी-अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार लोग उस झलक का अलग-अलग अर्थ करते हैं। उदाहरण के लिए 'लाल' रंग प्रेमी-प्रेमिकाओं के लिए प्रेम का प्रतीक है, आन्दोलनकारियों के लिए क्रान्ति का प्रतीक है और 'लाल' प्रकाश रेलगाड़ी के लिए खतरा का प्रतीक है। इसी प्रकार 'सूर्य' को ज्ञान का प्रतीक माना गया है। मगर दार्शनिकों की दृष्टि में उसका अर्थ आध्यात्मिक ज्ञान अथवा परमात्म तत्त्व का ज्ञान होगा और वैज्ञानिक लोग उस ज्ञान का अभिप्राय भौतिक ज्ञान से जोड़ेंगे तथा सामान्य लोग उस ज्ञान का अर्थ सूर्य के चतुर्दिक फैले हुए परिवृत्त से लेंगे। इसी प्रकार 'प्रेम' शब्द भी प्रतीक-रूप में अपना व्यापक अर्थ रखता है। भाई-भाई का प्रेम, भाई-बहन का प्रेम, पति-पत्नी का प्रेम, प्रेमी-प्रेमिका का प्रेम, किसी वासनोन्मत व्यक्ति का किसी वैश्या से प्रेम, माता और पुत्र का प्रेम, भक्त और भगवान का प्रेम-सभी प्रतीक-रूप में अपना भिन्न-भिन्न अर्थ प्रकट करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतीकात्मकता द्वारा

शब्दों के अर्थ में व्यापकता आती है। एक ही शब्द के माध्यम से विभिन्न मन:स्थितियों और कार्य-व्यापारों की अभिव्यंजना ही बड़े अच्छे ढंग से हो पाती है, अगर उस शब्द में प्रतीकात्मकता हो। काव्य के अन्तर्गत कवि को सूक्ष्म सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकात्मक शब्दों का ही प्रयोग करना पड़ता है क्योंकि ऐसे शब्दों द्वारा ही सूक्ष्म अभिव्यक्ति संभव है। इसी कारण काव्य-जगत में प्रतीकों का बड़ा ही अधिक महत्त्व है। प्रतीकों में अभिध की अपेक्षा लक्षणा और व्यंजना का प्राधन्य होता है। इनमें कल्पना का विशेष समाहरण होता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि विशेष प्रवृत्ति के कारण प्रतीक रहस्यमय, दुरुह और धूमिल हो जाते हैं जिसे सामान्य-जन को समझने में कठिनाई होती है। फलत: ऐसे प्रतीक-काव्य एक वर्ग-विशेष की परिधि में ही बँधकर रह जाते हैं और सामान्य जन इसका लाभ नहीं उठा पाते हैं।

आधुनिक हिन्दी काव्यों में जिन प्रतीकों के प्रयोग हुए हैं, वे दुरुह या रहस्यमय नहीं हैं, इसीलिए उन्हें लोकप्रियता मिली है, मगर प्रयोगवादी कविताओं और नई कविताओं में आज जो प्रतीक प्रयुक्त हो रहे हैं, वे इतने जटिल हैं कि सामान्य पाठक उन्हें आसानी से नहीं समझ सकते और यही कारण है कि ऐसी कविताएँ कुछ पाठकों तक ही सिमट कर रह गई हैं, सामान्य पाठकों की अभिरुचि वैसी कविताओं से हटती जा रही है।

अन्य कवियों की भाँति ही जगन्नाथ दास रत्नाकर के 'उद्धव-शतक' और नवल किशोर प्रसाद श्रीवास्तव रचित 'सनेह-शतक' में भी प्रतीकों के खूब प्रयोग हुए हैं।

जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' लिखित 'उद्धव-शतक' में कवि ने जो प्रतीक-योजना की है वह बड़ा ही सटीक है। तत्संबंधी एक कवित्त यहाँ प्रस्तुत है -

'कहै रतनाकर त्रिलोक-ओक-मंडल में
बेगि ब्रहमद्रव उपद्रव मचावै ना।।
हर कौं समेत हर-गिरि के गुमान गारि
पल मैं पतालपुर पैठन पठावै ना।।'

उपर्युक्त पंक्तियों में रत्नाकर ने बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रतीकों का प्रयोग किया है। यहाँ कृष्ण की शारीरिक शोभा के आधार राधा के नेत्रों के किनारों से ताप के कारण आँसुओं की धारा न दौड़ पड़े? तीनों लोकों और नक्षत्र-मण्डल शीघ्र ही गंगा-धारा की भाँति उत्पात न मचा दें? शिव के अहंकार को नष्ट करके कैलाश पर्वत सहित कहीं उन्हें पाताल लोक में धँसने के लिए न धकेल दे? हे उद्धव! तुम्हारी योग-चर्चा की कथा बरसाने में न फैल जाए और राधा इसे रंचमात्र भी न सुन ले, वरना बहुत बड़ा उपद्रव खड़ा हो जायेगा। यहाँ, गोपियाँ जिस ब्रह्मद्रव की चर्चा करती हैं वे गंगाजल स्वरूप राधा के अश्रु हैं जो कृष्ण-वियोग में नेत्रें से निरन्तर प्रवाहित हो रहे हैं। अश्रुओं को गंगाजल का प्रतीक माना गया है।

इसी प्रकार 'उद्धव-शतक' के निम्नलिखित पंक्तियों में भी प्रतीक-योजना देखी जा सकती है -

'कहै रत्नाकर बिरह-बिधु बाम भयौ
चंद्रहास ताने घात घालत घनी रहै।'

यहाँ कवि चाँदनी को अस्त्र का प्रतीक मानकर कष्टकारी और दु:खदायी दर्शाया गया है।

प्रतीकों की योजना में रत्नाकर ने काफी विदग्धता से काम लिया है। मनोभावों को व्यक्त करने के लिए रत्नाकर ने स्थान-स्थान पर नये प्रतीकों की योजना भी की है। उदाहरणार्थ -

'आए हौ सिखावन को जोग मथुरा तै तौपे
ऊधौ ये बियोग के बचन तबरावौ ना।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ
दुख दरिबै कौ, तौपे अधिक बढ़ावौ ना।
टूक-टूक है मन-मुकुर हमारौ हाय
चूकि हूँ कठोर-बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्‌यौ मोहि
हिय मैं अनेक मनोहन बसावौ ना।

यहाँ गोपियाँ जिस मिजाज से उद्धव से बातें कर रही हैं उससे लगता है कि उन्हें उद्धव पर विश्वास नहीं है। उनकी दृष्टि में उद्धव एक छलिया पुरुष के रूप में है जो उन्हें बहकाने आया है। यह प्रतीकार्थ किसी एक शब्द से नहीं, बल्कि समूचे छन्द से प्रकट हो रहा है।

इसी भाँति नवल किशोर श्रीवास्तव ने भी 'सनेह-शतक' काव्य में प्रतीकों का जो प्रयोग किया है वह देखने योग्य है। 'अषाढ़ का महीना भूत की तरह लगने' और 'गोपियों

के बहुत रोने-धोने से यमुना में बाढ़ के आ जाने में' प्रतीक का प्रयोग हुआ है। ऐसे प्रतीक के प्रयोग से यहाँ काव्य-सौष्ठव में वृद्धि आ गई है। यहाँ उनके द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतीक दर्शनीय है। यथा -

'श्याम के वियोग में सूखल ब्रजमण्डल के,
गाछ आ विरीछ के सकल पात-ढाढ़ हय।
कनइत-कनइत सब ब्रजवासिनी के
शाम से सुबह तक दु:ख भेल गाढ़ हय।।
बिना घनश्याम के जिनाई दुश्वार भेल,
भूत जका दु:ख देवे महीना अषाढ़ हय।
ब्रजवनिता के ढ़ेर-ढ़ेर लोर झहरे से
सूखल जमुना में आयल भारी बाढ़ हय।।'

निष्कर्ष:-

किसी जटिल भाव को व्यक्त करने के लिए जब कोई उपयुक्त शब्द नहीं मिलता तो कवि प्रतीकों का सहारा लेता है। कवि नवल किशोर जी ने भी प्रतीकों का सहारा लिया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -

'मुंह मारो धऽ कऽ, कान्ह केना के बिसर गेल
मथुरा में हुनका मिलल राजपद हय।
कृष्णचन्द्र लागी नैन हमर चकोर भेल,
चाँदनी जगावे पोर-पोर में दरद हय।।
सहलो न जाय सेहु दरद उ बड़ा भारी
तनिको तँ निमन न ऋतु इ शरद् हय।
केकरा के भेज समझाउ कान्ह के,
गोआर के जे समझावे उहे असल मरद हय।।'[11]

यहाँ 'कृष्णचन्द्र लागी नैन हमर चकोर भेल', 'गोआर के जे समझावे उहे असल मदर हय' में प्रतीक की योजना बड़ी कुशलता के साथ की गई है।

नवल किशोर जी ने बताया है कि वस्तु-बोध तो उपलक्षण है, इसका सच्चा लक्षण भाव-बोध कराना है। नवल किशोर जी को इस क्षेत्र में काफी सफलता मिली है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. डॉ० नगेन्द्र : 'काव्य-बिम्ब', पृ० सं० 50-54 ।
2. In its origin the movement (symbolism) was a revolt against Naturalism as being to concrete and against Parnassianism as being to clear out."
   Encyclopaedia Britanica, Vol. 21, Page 701.
3. Words and deeds are quite indifferent mode of the Divine Energy."- Emerson : Works III, Page 14.
4. 'संसार प्रतीकात्मक है। यह अगम, अगोचर परब्रह्म का विराट स्वरूप है। उसके सूक्ष्म रूप की अभिव्यक्ति है। जीवन भी प्रतीकात्मक है, अदृश्य साँसों के स्पन्दन का वह मूर्त रूप है। 'शब्द' मानवीय संवेदनों एवं अंतरंग भावनाओं के मूर्त्त रूप हैं, इसलिए वे भी प्रतीकात्मक हैं, सृष्टि के विभिन्न क्रिया-व्यापार भी प्रतीकात्मक हैं।' डॉ० रूपकिशोर मिश्र : हिन्दी सैद्धान्तिक आलोचना, पृ० सं० 295 ।
5. जगन्नाथ दास रत्नाकर: उद्धव-शतक, प्रथम संस्करण : 1931, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, पृ0 सं0 84.
6. वही: पृ० सं० 90 ।
7. जगन्नाथ दास रत्नाकर: उद्धव-शतक, प्रथम संस्करण : 1931, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, पृ० सं० 40.
8. डॉ० नवल किशोर श्रीवास्तव: सनेह-शतक, प्रथम संस्करण : 2002, लिच्छवी कंप्यूटर्स, कचहरी रोड, हाजीपुर (वैशाली) पृ० सं0 43 ।
9. डॉ० नवल किशोर श्रीवास्तव: स्नेह-शतक, प्रथम संस्करण : 2002, लिच्छवी कंप्यूटर्स, कचहरी रोड, हाजीपुर (वैशाली) पृ० सं० 36 ।

❖❖❖